International Journal of Political Science and Governance 2020; 2(1): 119-123

E-ISSN: 2664-603X
P-ISSN: 2664-6021
IJPSG 2020; 2(1): 119-123
Received: 21-02-2020
Accepted: 23-03-2020

अष्वनी कुमार
शोधार्थी, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, शान्तिकुंज, गायत्रीकुंज, हरिद्वार, उत्तराखण्ड, भारत

डॉ. चिन्मय पण्ड्या
प्रति–कुलपति, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, शान्तिकुंज, गायत्रीकुंज, हरिद्वार, उत्तराखण्ड, भारत

Corresponding Author:
अष्वनी कुमार
शोधार्थी, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, शान्तिकुंज, गायत्रीकुंज, हरिद्वार, उत्तराखण्ड, भारत

वर्तमान प्रषासनिक परिस्थितियों में गाँधी चिन्तन की प्रासंगिकता

अष्वनी कुमार और डॉ. चिन्मय पण्ड्या

सारांश
मानव सभ्यता प्रारम्भ से ही श्रेष्ठ जीवन जीने की आकांक्षी रहा है। इसलिए वह अपने आरम्भिक विकास के समय से ही आग, पहिए एवं धातु जैसी वस्तुओं का अविष्कार कर चुका था। जैसे–जैसे मानव सभ्यता का विकास हुआ विकास के साथ ही प्रशासनिक कियाएँ भी शनैः शनैः मजबूत होती गई और प्रशासन के विकास ने सम्पूर्ण समाज के कियाकलापों के नियमन का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया। महात्मा गाँधी ने नैतिक और सामाजिक उत्थान को ही अहिंसा का पर्याय माना। उनके अनुसार अहिंसा के पालन से व्यक्ति और समाज का उत्थान सम्भव है। महात्मा गाँधी ने स्वतंत्र राष्ट्र को स्वराज की संज्ञा दी उस स्वराज में प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता और प्रतिभा के अनुसार उसको अधिकार एवं शासन प्रणाली में स्थान देने का विचार प्रस्तुत किया। उन्होनें उसका वर्णन 'रामराज्य' शब्द के द्वारा किया है अर्थात् विशुद्ध राजनीति के आधार पर स्थापित तंत्र। विदेशी सत्ता से सम्पूर्ण मुक्ति और साथ ही संपूर्ण आर्थिक स्वतंत्रता। प्रस्तुत शोध पत्र महात्मा गाँधी के इन्हीं वैचारिक प्रकाश के आलोक में वर्तमान प्रशासनिक परिस्थितियों पर उनकी प्रासंगिकता को प्रस्तुत करने का एक अल्प प्रयास है।

कूट शब्दः प्रशासन, रामराज्य, सभ्यता, संस्कृति, श्रेष्ठ जीवन, स्वतंत्रता

प्रस्तावना
प्रशासन राजा और राज्य व्यवस्था के द्वारा लिए जाने वाले निर्णयों एवं नीतियों को कार्यान्वित करता था। इस प्रकार समाज के समक्ष वह राज्य शक्ति का मूर्त रूप बना। समाज में कानून और व्यवस्था बनाए रखने तथा कानूनों का उल्लघंन करने वाले व्यक्तियों के दण्ड देने की व्यवस्था बनायी गई। इस प्रकार प्रशासन के लोककल्याणकारी स्वरूप का निर्माण हुआ। [1]

भारत में प्रारम्भ से ही प्रशासन का स्वरूप राजतंत्रात्मक रहा है। चूंकि वैदिक काल से लेकर मध्य युग के आगमन तक देश के अधिकांश भू–भाग पर राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था लागू थी। प्रशासन के आधार पर स्मृति, पुराण, नीतिशास्त्र, संहिताएँ आदि थी और प्रशासन का आदर्श था। प्रजा को सुखी रखना राजा का कर्त्तव्य था। मध्ययुग में जैसे ही शासन के आधार परिवर्तित हुए वैसे ही प्रशासन का स्वरूप बदल गया। अब प्रशासन पूर्णतया निरंकुश हो गया, अत्याचार बढ़ने लगे, शोषण आम जनता का हो रहा था। भारत में अंग्रेजो की प्रशासनिक व्यवस्था का कार्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियों ने अपने हाथों में लिया था। प्रारम्भिक दिनों में कम्पनी के समस्त व्यापारिक एवं प्रशासनिक कार्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के समय में भी इन्हीं तथ्यों की पुष्टि होती है।

15 अगस्त, 1947 को राष्ट्र की स्वतंत्रता के साथ ही शासन के उद्देश्य परिवर्तित हो गए। अब शासन एवं प्रशासन का मुख्य उद्देश्य नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय, स्वतंत्रता एवं समता प्रदान करना था। [2] प्रशासन तंत्र को नियामकीय, विकासात्मक एवं जनकल्याणकारी कार्यों के कुशल सम्पादन में सक्षम बनाने के लिए समय–समय पर अनेक समितियाँ एवं आयोग गठित किए गए और समितियों की संस्तुतियों को स्वीकार भी किया गया। इस प्रकार भारतीय प्रशासन का स्वरूप निरन्तर परिवर्तित होता रहा है। इन परिवर्तनों को हम अनेक बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं, जिनमें से संसदीय लोकतंत्र एवं संघात्मक शासन की स्थापना प्रमुख हैं। इनके अलावा प्रशासन की प्रकृति में परिवर्तन तथा समाजवादी व धर्म निरपेक्ष राज्य आदि अति आवश्यक बिन्दु हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात देश में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गई। आजादी के पूर्व कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं थी, वह केवल ब्रिटिश आकाओं के प्रति ही उत्तरदायी थी। परन्तु संसदीय लोकतंत्र की स्थापना के साथ ही कार्यपालिका को विधायिका के प्रति उत्तरदायी बनाया गया। कार्यपालिका का अर्थ मंत्रिमंडल से है, जबकि विधायिका का तात्पर्य कानून निर्माण करने वाली संस्था 'संसद' से है। कार्यपालिका का गठन संसद के सदस्यों में से किया जाता है और इसके गठन का अवसर उस दल को मिलता है जिसे संसद के निम्न सदन से बहुमत प्राप्त होता है और संसद के वे जनप्रतिनिधि होते है जो जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुनकर आते हैं। संसदीय शासन पद्धति में शासन की वास्तविक सत्ता जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों में निहित होती है। प्रतिनिधियों की इस सभा को मंत्रिपरिषद कहा जाता है जो संसद के प्रति उत्तरदायी होती है। [3]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कार्यपालिका अपने अस्तित्व के लिए जनप्रतिनिधियों के बहुमत के साथ समर्थन पर निर्भर करती है और ये जनप्रतिनिधि जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

ब्रिटिश शासन के समय हमारे देश में एकात्मक शासन था जिसमें एक केन्द्र से शासन संचालित किया जाता था। जबकि हमारे देश में भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक भिन्नतायें पाई जाती हैं, इन भिन्नताओं के साथ ही इनकी अपनी–अपनी समस्याएँ भी भिन्न प्रकृति की होती हैं। इसलिये इनका स्थानीय आधार पर बेहतर समाधान किया जा सकता है। शक्ति विभाजन के सिद्धान्त के आधार पर संघात्मक शासन की स्थापना की गई जो सामाजिक और सांस्कृतिक भिन्नताओं को बनाये रखने के साथ ही उनकी समस्याओं के स्थानीय स्तर पर समाधान संभव हो सका। [4] किसी भी संघ के केन्द्र तथा राज्य सरकारों के निर्णय के लिए सहयोग तथा तालमेल का शासन तंत्र होना आवश्यक है। भारतीय संघ में भी अन्तर्राज्यीय सहयोग के लिए इस प्रकार की व्यवस्था की गई है। एम.वी. पायली कथन हैं कि ''भारतीय संविधान के संघीय होने, न होने पर विवाद उठाने का कोई कारण दृष्टिगत नहीं होता, संविधान संघवाद की कसौटी पर खरा उतरता है'' इसी संदर्भ में प्रो0 अलैक्जेण्ड्रो विक्स के अनुसार, ''भारत निःसंदेह एक संघात्मक राज्य है जिसमें प्रभुसत्ता के लक्षणों को केन्द्र और राज्यों में बाँटा गया है।'' [5]

प्रशासन की प्रकृति में परिवर्तन के अन्तर्गत भारतीय संविधान में उन लक्ष्यों और उद्देश्यों का स्पष्ट प्रावधान किया गया है, जिनकी सिद्धि प्रशासन को प्राप्त करनी है। यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि स्वतंत्रता के पूर्व हमारे देश का प्रशासन नियामकीय प्रकृति का था दूसरे शब्दों में प्रशासन के कार्य मुख्यतः नियामकीय थे अर्थात प्रशासन का मुख्य कार्य कानून और व्यवस्था बनाये रखना था, जिससे अपने लक्ष्यों की सिद्धि में आसानी बनी रहे। परन्तु स्वतंत्रता के उपरान्त संविधान निर्माताओं ने स्पष्ट रूप से उन लक्ष्यों का प्रावधान किया जिनको ध्यान में रखकर प्रशासन को संचालित किया जाना था। पहले प्रशासन जनता पर अपना दबाव बनाकर कार्य करता था, जनता के कोई मौलिक अधिकार नहीं थे। हमारे देश में लोकतंत्र की स्थापना की गई, जिसमें सरकार जनता द्वारा निर्वाचित होती है और जनता के लिए काम करती है। संविधान के द्वारा मौलिक अधिकारों का प्रावधान किया गया है। [6] भारतीय संविधान में अनेक अनुच्छेद ऐसे हैं जिन्हें संसद के साधारण बहुमत से भी संशोधित किया जा सकता है। [7] शासन का एकमात्र लक्ष्य प्रत्येक गरीब की आँख से आंसू पोछना और प्रत्येक भूखे व्यक्ति के मुँह में निवाला देना रखा गया है। [8]

समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष राज्य में समाजवाद और पंथ निरपेक्ष शब्द की सार्थकता रही है। यहाँ समाजवाद का तात्पर्य राज्य के लोगों के बीच आय की असमानताओं को न्यूनतम करने का प्रयास करना है तथा पंथनिरपेक्ष का अर्थ है कि राज्य का अपना कोई राजधर्म नहीं हो, इसका तात्पर्य यह भी है कि सभी धर्मों के साथ समान बर्ताव करेगा। किसी के साथ पक्षपात पूर्ण व्यवहार नहीं करेगा। हालांकि इन शब्दों के समावेश के पूर्व भी ऐसे लक्ष्यों की पूर्ति के लिए उपबन्ध थे। [9] भारतीय प्रशसन की विषेषताएँ अनेक हैं जिनके समावेश से स्वतंत्रता के उपरान्त भारतीय प्रशासन के उद्देश्यों और लक्ष्यों में अभूतपूर्व परिवर्तन आया। जो निम्नलिखित हैं–

1. गतिशीलता

आजादी के बाद प्रशासन के उद्देश्यों और लक्ष्यों में आमूलचूल परिवर्तन देखने को मिल रहा है। आज प्रशासन जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन बन गया है। समय के बदलाव के साथ नित्य नई आवश्यकताऐं और समस्यायें पैदा होती रहती हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति और समस्याओं के समाधान हेतु प्रशासन को निरन्तर तत्पर रहना होता है क्योंकि अब पशासन जनता के स्वामी के रूप में नहीं वरन सेवक के रूप में कार्य कर रहा है।

2. विकासात्मकता

विकासात्मकता एक परिवर्तनशील अवधारणा है जो निरन्तर सामाजिक, राजनीतक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को लाने के लिए प्रयत्नशील है, साथ ही इन परिवर्तनों को सकारात्मक दिशा देने का भी कार्य कर रहा है। इसका सम्बन्ध योजना निर्माण की पूर्ति से भी सम्बन्ध रखता है। विकास प्रशासन का सम्बन्ध नीतियों के कार्यान्वयन से है, इसलिए सरकार के जनकल्याणकारी और सशक्तिकरण सम्बन्धी नीतियों के कियान्वयन की जिम्मेदारी भी इसी पर होती है।

3. उत्तरदायी

संसदीय शासन की एक प्रमुख विशेषता, उत्तरदायी शासन की स्थापना। इसलिए अपने विभाग के कार्यों के लिए वे जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

4. नौकरशाही एवं लालफीताषाही

देश में नौकरशाही का एक विस्तृत ढाँचा विद्यमान है, जो नीति–निर्माण में सहयोग भूमिका से लेकर, नीति के कियान्वयन तक के कार्यों में सक्रिय रहती है। परन्तु यह नौकरशाही अपने दायित्वों के निर्वहन में नियम–कानून और प्रक्रिया पर ज्यादा जोर देती दिखायी देती है, जिससे नियम–कानून और प्रक्रिया पर ज्यादा जोर देना ही साध्य के रूप में दिखायी देने लगता है, जिससे लालफीताशाही का दोष प्रशासन में उभरकर सामने आता है।

5. तटस्थता

भारतीय प्रशासन की महत्त्वपूर्ण विशेषता राजनीतिक तटस्थता। अर्थात लोक सेवक अपने सार्वजनिक जीवन में राजनीतक अभिव्यक्तियों अर्थात राजनीतिक विचारों और व्यवहारों से सर्वथा दूर रखता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रशासनिक अधिकारी बिना किसी दलीय निष्ठा के पूर्वाग्रह से मुक्त होकर अपने दायित्वों का निर्वहन करता है।

6. प्रशासन की बढ़ती हुई शक्तियाँ

स्वतंत्रता के पूर्व प्रशासन की प्रकृति नियामकीय थी, जिसका प्रमुख लक्ष्य कानून और व्यवस्था बनाए रखना था। परन्तु स्वतंत्रता के पश्चता संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गई, जिससे सरकार जनता की भलाई के लिए कार्य करती है। स्वतंत्रता के पश्चात संविधान निर्माताओं ने मूलभूत सामाजिक आर्थिक लक्ष्यों की घोषणा की है। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए नियोजन प्रक्रिया प्रारम्भ की गयी। इस कारण से प्रशासन की शक्तियों में अभूतपूर्व वृद्धि कर दी है। नित्य नवीन कल्याणकारी योजनाएँ लागू की जा रही हैं, इनको लागू करने की जिम्मेदारी प्रशासन पर होती है। इसके साथ ही साथ अब तो सशक्तितकरण से सम्बन्धित नीतियाँ भी लागू की जा रही है, जिससे समाज में अब तक हासिए पर रहे समुदायों को भी समाज की मुख्य धारा से जोड़ा जा सके। इसी प्रकार से अन्य जो भी लोकहित में आवश्यक कार्य हों प्रशासन के द्वारा ही किए जाते हैं। लोकतंत्र में प्रशासन की बढ़ती जिम्मेदारियों ने उसकी शक्तियों में भी अभूतपूर्व वृद्धि कर दी है।

7. समन्वयात्मकता

देश में भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विविधताएँ हैं। इसको ध्यान में रखते हुए संविधान निर्माताओं ने संघात्मक शासन

व्यवस्था को अपनाया। इसके लिए साथ ही साथ मजबूत केन्द्र की स्थापना के लिए एकात्मक शासन के मुख्य प्रावधानों को भी सम्मिलित किया गया। इसी बात को ध्यान में रखते हुए संघ और राज्य के लए सम्मिलित सेवाओं का प्रावधान किया गया, जिसे अखिल भारतीय सेवा कहते हैं, जिसमें तीन अखिल भारतीय सेवायें हैं, पहला– प्रशासनिक सेवा, दूसरा– पुलिस सेवा और तीसरा– वन सेवा। इन सेवाओं का उद्देश्य केन्द्र और राज्य के बीच सहयोग को निरन्तर प्रोत्साहित करना, जिससे राष्ट्र निर्माण का कार्य सफलता पूर्वक किया जा सके और कल्याणकारी और सशक्तिकरण नीतियों को सफलतापूर्वक लागू किया जा सके।

भारतीय प्रशासन की अन्य विशेषताएँ क्रमशः प्रशाासनिक अधिकारियों के अपने दायित्वों के निर्वहन में राजनीतिक हस्तक्षेप दिखाई दे रहा है। प्रशासन को जनता के प्रति संवेदनशील बनाया जाये। अच्छा प्रशासन, सहभागिता, शालीनता, पारदर्शिता, जिम्मेदारी, निष्पक्षता और कार्यक्षमता जैसे व्यापक रूप से स्वीकार्य मूल सिद्धान्तों को शामिल करता है।

महात्मा गाँधी ने स्वतन्त्र भारत के पुनर्निर्माण के लिए रामराज्य का स्वप्न देखा था। वे कहा करते थे कि नैतिक और सामाजिक उत्थान ही अहिंसा का नाम दिया है। यह स्वराज्य का चतुष्कोण है। उनकी शासन प्रणाली अपनी–अपनी प्रतिभा के अनुसार होगी, परन्तु स्वराज में हमारी शासन प्रणाली हमारी अपनी प्रतिभा के अनुसार होगी। उन्होनें उसका वर्णन 'रामराज्य' शब्द के द्वारा किया है अर्थात् विशुद्ध राजनीति के आधार पर स्थापित तंत्र। विदेशी सत्ता से सम्पूर्ण मुक्ति और साथ ही संपूर्ण आर्थिक स्वतंत्रता।

गाँधी जी की सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था करूणा, प्रेम, नैतिकता, धार्मिकता व ईश्वरीय भावना पर आधारित है। उन्होनें नर सेवा को ही नारायण सेवा मानकर दलितोद्धार व दरिद्रोद्धार को अपने जीवन का ध्येय बनाया। वे शोषणमुक्त, समतायुक्त, ममतामय, परस्पर स्वावलंबी, परस्पर पूरक व परस्पर पोषक समाज के प्रबल हिमायती थे। उनका मानना था कि राजसत्ता और अर्थसत्ता के विकेद्रीकरण के बिना आम आदमी को सच्चे लोकतंत्र की अनुभूति नहीं हो सकती उनकी ग्राम स्वराज की कल्पना भी राजसत्ता के विकेन्द्रीकरण पर आधारित रही है। फरवरी 1916 को काशी के नागरी प्रचारिणी सभागार में उन्होनें कहा था– ''मेरे सपनों का स्वराज्य गरीबों का स्वराज होगा। स्वराज सबके कल्याण के लिये होगा। वे कहते थे, ''ध्येयवादी जीवन के चार तत्व हैं– साधक, साधन, साधना और साध्य। साध्य का अर्थ लक्ष्य या ध्येय से है। इसलिये साध्य की पवित्रता के लिए यह आवश्यक है कि साधन, साधक और साधना तीनों पवित्र हो। समाज के नैतिक उत्थान एवं पुनर्संस्कार के लिए 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' की वृहत्तर लोक मंगल की कामना से पूर्ण होने के बावजूद गाँधीवादी विश्व दृष्टि का आधार स्वानुभूत अनुभव है। उन्होंने राजसत्ता की धनलोलुपता को समस्त सामाजिक व्याधियों के मूल कारण के रूप में पहचाना और उनसे मुक्ति के लिए सत्य, अहिंसा, त्याग, अस्तेय, अपरिग्रह, आत्मनिग्रह, सहिष्णुता, मर्यादित आचरण, तप, व्रत, उपवास, आत्मशुद्धि, सरल जीवन एवं गौरक्षा को अपनी प्रतिरोध नीति के रूप में विकसित किया। [10] उनके विचार से भौतिक समृद्धि की यह लालसा मनुष्य को निपट स्वार्थी, धूर्त एवं अर्थलोलुप ही नहीं आत्मकेन्द्रित भी बनाती है। शुमैकर गाँधी जी को 'बीसवीं सदी के महानतम अर्थशास्त्री' की संज्ञा देते है, क्योंकि गाँधीजी का प्रबल आग्रह है कि 'विकास अनिवार्यतः सरल प्राविधिकी पर आधारित होना चाहिए और यह प्राविधिकी गाँव के लोगों के हाथ में होनी चाहिए।''

गाँधीजी ने गीता को कर्म का शब्दकोष कहा है। [11] उनके लिये व्यक्ति तथा समाज एक ही सिक्के के दो पहलू है। उनकी दृष्टि में स्वदेशी एक वैकल्पिक अवधारणा मात्र नहीं है, बल्कि प्रकृति और मनुष्य के अद्भुत सामंजस्य का एक मात्र जीवन दर्शन है। उनके शब्दों में स्वदेशी मानवता और प्रेम का सिद्धांत हैं। गाँधीजी ने कहा कि अहिंसा का व्यावहारिक अर्थ है कि जानबूझकर हिंसा नहीं करना। मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है। सम्पूर्ण विश्व एक आध्यात्मिक एकता के सूत्र में जुड़ा हुआ है। [12] अहिंसा का प्रयोग सामाजिक व राजनैतिक जीवन में करने का अर्थ होगा कि प्रत्येक प्रकार का दमन, अन्याय, शोषण व उत्पीड़न का निजी और सामूहिक रूप से अहिंसक प्रतिकार। अंतर्राष्ट्रीय आयाम में गांधी ने कहा कि अहिंसा के माध्यम से एक न्याय सम्मत अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था का निर्वाह किया जा सकता है। उनका मत था कि अहिंसा द्वारा किसी भी अंतर्राष्ट्रीय समस्या का समाधान संभव है। यह भौतिक बल की श्रेष्ठता का ही पर्याय है। अतः अहिंसा एक अंतर्राष्ट्रीय आयाम का पर्याय है।

सत्यागह की रणनीति उनकी दृष्टि में सत्य एक स्तर पर शाश्वत जीवन मूल्यों का पर्याय है तथा दूसरे स्तर पर सामाजिक, वैयक्तिक और राजनैतिक सरोकारों को समझने का अर्थपूर्ण माध्यम है। व्यापक अर्थ में सत्य संपूर्ण मानवता एवं मूलभूत अर्थ में उसके सारतत्व का द्योतक है। गाँधी ने स्वयं सत्याग्रह को 'सत्य की शक्ति', 'प्रेम की शक्ति' एवं 'आत्मशक्ति' के रूप में परिभाषित किया। [13] विश्व में होने वाले राजनैतिक परिवर्तनो के अस्त्र के रूप में सत्यागह को 'सद्गुण की शक्ति' भी माना जा सकता है उनके अनुसार सत्याग्रह कर्मयोग की तरह वैज्ञानिक दृष्टि एवं निश्चित अनुशासन पर आधारित है। आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि उसका सम्बल है। सत्य के प्रयोगों एवं सत्याग्रह के लिए भी वैयक्तिक, सामूहिक, राष्ट्रीय स्तरों पर वैज्ञानिक दृष्टि, अनुशासन एवं प्रशिक्षण आवश्यक है। उन्होंने अंतरात्मा को सत्य की कसौटी माना। नीतिप्रधान राजनीति का प्रारम्भ महात्मा गाँधी का संपूर्ण चिन्तन वर्तमान समाज के लिए मार्गदर्शक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से परिपूर्ण है। उन्होनें जीवन का लक्ष्य सत्य की खोज माना। वर्तमान समाज को मार्गदर्शित करने के संदर्भ में गीता से गाँधी ने सीखा कि अहिंसा साधन मात्र है, सत्य लक्ष्य है। गाँधीजी का सामाजिक परिवर्तन का विचार एक पूर्ण विचार था, जिसके अंतगर्त वे समस्त आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक व्यवस्था का रूपान्तरण चाहते थे।

इसके साथ ही किसी भी राष्ट्र के स्वयंसेवी संगठनो का कार्यक्षेत्र रचनात्मक होना चाहिए। रचनात्मक कार्य का प्रमुख उद्देश्य लोकशक्ति जगाना एवं संगठित करना है ताकि राज्यशक्ति के साथ उसका सम्मानपूर्ण सहयोग हो सके तथा सामान्य जन–जीवन के क्षेत्र में वह राज्य–शक्ति का विकल्प बन सके। उन्होनें रचनात्मक कार्यकर्ताओं से कहा कि, ''वे सत्ता की राजनीति और उसकी छूत से अपने को अलग रखे।'' जिन्होनें राजनीतिक दर्शन के उस सिद्धान्त का पूरी तरह से खण्डन किया कि साध्य से ही साधन का औचित्य सिद्ध हो जाता है। यह सिद्धान्त भारतवर्ष में कौटिल्य और पश्चिम में मैकियावली से शुरू होता है।

राजनीति के स्थान पर लोकनीति

गाँधी का दर्शन है जिसमें साधन अपने आप में स्वतंत्र है, वह साध्य से जुड़ा अवश्य है, परन्तु साध्य से निर्धारित नहीं। सामाजिक पुनर्निर्माण के प्रयास में प्रथम स्थान व्यक्ति का है। समाज का कोई भी प्रश्न 'व्यक्ति की गरिमा' एवं 'नागरिक महत्ता' से परे नहीं है। उनके दृष्टिकोण मे समाज की उन्नति साधारण व्यक्ति की आध्यात्मिक शक्ति के विकास पर निर्भर है। उन्होंने नारी की स्वतंत्रता एवं शिक्षा पर बल दिया उनहोंने राजनीति के स्थान पर ''लोकनीति'' की प्राथमिकता एवं औचित्य पर बल दिया। उनके चिन्तन में स्पष्ट है कि यदि राजनीति शासन पर आधारित है तो लोकनीति अनुशासन पर केद्रित है वह स्वतंत्रता, स्वायत्तता कर्तव्यपरायणता तथा जागरूकता पर आधारित है।

गाँधी ने माना कि लोकनीति, आध्यात्मिकता से प्रेरित ''कर्मयोग की सम्पूर्ति है।'' [14] अर्थात् गाँधीजी के नीति संबन्धी विचार जनकल्याण की दृष्टि से प्रासंगिक है। उनके अनुसार अधिकार एवं दायित्व परिपूरक है। वे अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों को अधिक महत्व देते है। वे सवार्देय समाज की स्थापना एवं सशक्त स्थिति में ही समस्त जनमानस की प्रगति, विकास एवं उत्थान को चरितार्थ मानते थे। प्रो. डी.बी. माथुर के अनुसार गाँधी ने राजनीतिक पुनर्निर्माण प्रक्रिया में यदि सत्याग्रह, बहिष्कार, अवज्ञा, प्रतिशोधविहीन विरोध को प्राथमिकता प्रदान की, तो इस प्रयास में उनके ''सृजनात्मक तनाव'' सिद्धान्त की क्रियान्विति थी। उनके संपूर्ण विरोध के साधनों की सर्वविदित स्थिति, शुद्धि एवं प्राथमिकता से सृजनात्मक तनाव प्रक्रिया जुड़ी हुई थी। गाँधीजी के सभी आन्दोलन गोपनीयता मुक्त आन्दोलन है। उन्होंने ''सृजनात्मक तनाव'' द्वारा जनसमाज को विरोध तथा अवज्ञा हेतु प्रशिक्षित करने का प्रयास किया। वे सामाजिक परिवर्तन एवं रचनात्मकता का आधार संपूर्ण समाज की सहभागिता मानते है। जनभागीदारी एवं जनशक्ति पर आधारित रचनात्मकता को बनाये रखने के लिये सदाशयी विश्वसनीयतापरक, प्रतिशोधहीन मूल्य, सहकारवृत्ति में विश्वास एवं साधनों की शुद्धता को मुख्य आधार बनाया। परिवर्तन हेतु गाँधी ने सहकार, सहयोग, विश्वसनीयता के स्थान पर असहयोग, बहिष्कार, सविनय अवज्ञा, अभयपूरित प्रतिरोध को भी आवश्यक साधन बनाया। गाँधी रचनात्मक कार्यक्रम की व्यावहारिकता के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन चाहते थे। [15] उनके लिये खादी एवं चरखा आर्थिक समानता लाने का एक साधन है। [16] इन विचारों के माध्यम से गाँधीजी वर्तमान विश्व समाज में आर्थिक समानता एवं एकता के पक्षधर रहे है। चिन्तन के स्तर पर न्याय सर्वव्यापी सर्वगुण को प्रतिबिम्बित करता है तो व्यवहार सामाजिक सद्गुण का आधार बन जाता है। गाँधी जी के चिन्तन में न्याय–ज्ञान के क्षेत्र में, सत्य–व्यवहार के क्षेत्र में नीति परायणता और सामाजिक संबंधो के क्षैत्र में मानवतावादी मूल्यों का समायोजन है। उनके न्याय पर दिये गये विचार मानव की विकृत मानसिकता को परिष्कृत करने में सहायक है। उनका सामाजिक न्याय के संदर्भ में सर्वाधिक प्रासंगिक व महत्वपूर्ण योगदान है कि उन्होनें न्याय को मूर्त स्वरूप प्रदान किया, उसके साधन बताये, अन्याय के निराकरण हेतु अनेक संरचनात्मक उपायों की क्रियान्विति को सक्षमता प्रदान की। गाँधीजी ने अधिकारों को नैतिक आध्यात्मिक 'संकल्प' की दृढ़ता एवं कर्तव्यो को 'स्वधर्म' के रूप में परिभाषित किया। मानवीय न्याय की नैतिक व्याख्या प्रस्तुत। गाँधी ने स्वीकारा कि जनसमाज के मूल्यों में स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व महान् आदर्श है लेकिन यह विरासत संपूर्ण मानवता की हैं। [17] उनके अनुसार अधिकारों की प्राप्ति समाजोपयोगी कर्तव्यों की पूर्ति के द्वारा ही हो सकती हैं। कि उनकी दृष्टि में अधिकारों की व्यवस्था स्वावलबंन एवं वैयक्तिक स्वायत्तता का आग्रह है।

गाँधीजी बालकों में मानवीय गणुों का विकास करने पर बल देते थे। जिसकी आज भी प्रासंगिकता है क्योंकि आज जो विनाश एवं तबाही फैल रही है वह मनुष्यों में मानवता की कमी के कारण बढ़ती जा रही है। उनने क्रिया द्वारा सीखने पर बल दिया जो आज भी उतना ही प्रासंगिक है क्योंकि क्रिया या स्वयं करके सीखनें पर प्राप्त ज्ञान स्थायी होता है जो हर क्षैत्र के लिये आवष्यक है। उन्होंने शारीरिक श्रम का सम्मान किया। उनके अनुसार मनुष्य को अपना कार्य स्वयं करना चाहिए। किसी पर निर्भर नहीं होना चाहिए। [18] गाँधीजी द्वारा दिये गये आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक एवं नागरिकता संबन्धी विचारों के साथ–साथ सवार्देय समाज की स्थापना की जिसके अंतगर्त श्रम का महत्व होगा, धन का नहीं, स्नेह और सहयोग की भावनाएँ होगी, घृणा एवं पृथकता नहीं, शोषण के स्थान पर परहित एवं संचय की प्रवृत्ति के स्थान पर त्याग की प्रवृत्ति होगी। परिणाम यह है कि विश्वग्राम धीरे–धीरे हितों के भूमण्डलीकरण में बदलता गया है। अपने चारों ओर के परिदृश्य पर विचार करें तो बाजारवाद, उत्तर उपनिवेषवाद, उत्तर आधुनिकवाद, विश्वबाजार, संरचनावाद, विखण्डनवाद, उपभोक्तावाद आदि वादों से घिरा पाएगा। इसमें सन्देह नहीं कि महात्मा गाँधी व्यक्ति नहीं व्यक्तित्व थे, ऐसे व्यक्तित्व जिनकी कर्मठता ने मनुष्य के शिखरों का स्पर्श किया। ऐसे व्यक्तित्व का मौजूद होना वर्तमान और भविष्य को एक सूत्र मे बांधने का आधार था। आज भी महात्मा गाँधी का व्यक्तित्व और कृतित्व वर्तमान एवं भविष्य के लिये एक मजबूत आधारशिला है। विशेषतः वैश्वीकरण के इस दौर में आम आदमी पर मंडराते खतरों से जूझने की ताकत देता है। वैश्वीकरण के कारण पूँजीवाद और बाजारवाद के बढ़ते आक्रमणों का सामना करने मे गाँधीजी की कथनी और करनी सही मार्गनिर्देश करती है। वैश्वीकरण ने बड़े पैमाने पर समाज को विखंडित किया है और शाश्वत मानवीय मूल्यों को समाप्त करने की साजिश की है। बाजार पर पैनी निगाह रखने वाले सूचना तंत्र के विस्तार ने हर आदमी को एक आर्थिक इकाई में बदल दिया है। वैश्वीकरण के इस दौर में लोग धीरे–धीरे वस्तु में बदलते जा रहे है। वैश्वीकरण की आदतें मनुष्य को मशीन की तरह निर्जीव बनाती जा रही है। ऐसे हालात में गाँधी के जीवन और सोच की दिशाएं रोशनी की किरण की तरह रास्ता दिखाती है। [19] साम्यवाद और समाजवाद में अपनी आस्था रखते हुए गाँधीजी ने कहा था, वर्गहीन समाज एक आदर्श है उसके लिये प्रयास भी करना चाहिए मैं स्वयं को साम्यवादी भी कहता हूँ, जहाँ तक मैंने समझा साम्यवाद समाजवाद की स्वाभाविक परिणति है। [20] वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में जब संसार भर में कई बहुराष्ट्रीय व्यावसायिक कंपनियाँ अपना माल बेचकर अधिक से अधिक लाभ कमाने में जुटी है और हर आदमी इस मुनाफे में अपना हिस्सा बटोरनें लगा है, महात्मा गाँधी ने मानवीय मूल्यों और राष्ट्रीय हितों की बात की है। गाँधी चिन्तन मानवता, सत्य, अहिंसा, शांति, संतोष, अनाशक्ति, एकता और राष्ट्रीयता पर आधारित है। वे मनुष्य को मनुष्य बने रहने की सलाह देते हैं और इसके लिये जरूरी आचार व्यवहार का संदेश भी देत है। [21]

यह वैश्वीकरण की नई व्याख्या है, जिसके अंतगर्त महात्मा गाँधी समूचे संसार के लिये एक आदर्श जीवन पद्धति का आविष्कार करते दिखाई देते है। जहाँ वैश्वीकरण ने बाजारवाद का विस्तार किया है और मनुष्य को मनुष्य बने रहने से रोकने की कोशिश की है। गाँधीजी के सभी विचार उनके अनुभवों से निकले है। वे जो सोचते है वह कहते है और जो कहते है वह करते है। कथनी और करनी की दूरी वैश्वीकरण की एक बडी चुनौती है। आर्थिक समृद्धि के अंतहीन लालच ने आतंकवाद को प्रोत्साहित किया। हर प्रकार के आतंकवाद चाहे वह धार्मिक कट्टरपंथियो का आतंकवाद हो या किसी राष्ट्र का आंतरिक आतंकवाद सभी का जवाब गाँधीजी का अहिंसा सिद्धांत ही है। उनका रास्ता निर्माण और विकास का रास्ता है। गाँधीजी का चिंतन संसार के प्रत्येक प्राणी को जोड़ता है। दूसरी और वैश्वीकरण केवल बाजारों का नेटवर्क मजबूत करता है। दुनिया में वैश्वीकरण एक जीवन्त प्रक्रिया है और एक गंभीर चुनौती भी। वैश्वीकरण की चुनौतियों का सामना महात्मा गाँधी के विचारों के सहारे संभव है। हमें स्वीकारना होगा कि गाँधीजी अतीत में थे, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगें। जिस प्रकार आधुनिकता के अंतगर्त समाज, संस्कृति, आर्थिकी व व्यक्ति का परिवर्तित व भिन्न स्वरूप उभरकर आया, उसी प्रकार उस स्वरूप को मानवतावादी मूल्यों से जोड़ने का काम उत्तर आधुनिकता ने किया। गाँधीजी के विचार उत्तर आधुनिकता के पूर्व प्रकाश में आये थे। उनके विचारों की व्याख्या में विविध आयाम है। उन्होंने इस बात को प्रमाणित किया कि विचारों के निर्माण में बौद्धिक खुलेपन के साथ–साथ मन की संवेदना व चित्त की निर्मलता भी आवश्यक है। उन्होंने

तात्कालिक स्थितियों को बौद्धिक संवेदनशीलता के आधार पर विश्लेषित किया व उनकी विचारात्मक प्रतिक्रियाओं को क्रिया के स्तर पर प्रयोग किया। इस दृष्टिकोण से उनके विचार क्रियात्मक स्तर पर महत्वपूर्ण एवं व्यावहारिक माने गये है। गाँधीजी के सभी विचारों का संबंध व्यवहारगत क्रियाओं से जुड़ा था। विचारों को क्रिया के स्तर पर संभाव्य बनाने के लिए उनने अपने हर विचार का स्वयं के जीवन में परीक्षण व उपयोग किया। उन्होंने साध्य और साधन दोनों को समान महत्व दिया। सही लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये सही साधनों का उपयोग गाँधीजी के विचार–पुँज का आवश्यक तत्व रहा। उन्होनें जीवन में शील, नैतिकता, श्रम को अपनाया। लौकिक व अलौकिक के भेद को मिटाकर गाँधीजी ने जीवन के समग्र दृष्टिकोण व विश्व दृष्टि की प्रस्तुति दी। उनका मानना था कि प्रकृति व्यक्ति की हर आवश्यकता की पूर्ति तो कर सकती है पर हर लालच की नहीं। उन्होनें स्वराज की अवधारणा को उपनिवेशवाद से शांतिपूर्ण संघर्ष के द्वारा जोड़ा। वर्तमान संदर्भ में गाँधीजी के न्यासिता के विचार के माध्यम से शोषण की प्रक्रिया का अंत हो सकता है व कार्य–कौशल भी अधिक सुचारू रूप से सम्पन्न किया जा सकता है। 'अधिकतम लोगों का अधिकतम भला' के सिद्धांत को नकारते हुए गाँधीजी ने अपने सवार्देय सिद्धांत के माध्यम से सभी के उदय की बात कही है। उनका यह विचार वर्तमान मे इस दृष्टि से प्रासंगिक है कि यह सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय की भावना पर आधारित है। उन्होनें बताया कि मनुष्य के जीवन में बौद्धिक, मनोवैज्ञानिक, शारीरिक आयामों के अतिरिक्त आध्यात्मिक आयाम भी अभिन्न अंग है।

गाँधीजी का चिन्तन प्रासंगिक है क्योंकि उसमें संदर्भ व सार्वभौमिकता को जोड़ा गया है। महात्मा गाँधी ने कहा था– आँख के बदले आँख का प्रतिशोध भरा कानून अगर विश्व में लागू हो गया तो पूरा विश्व अंधा हो जायेगा। डा0 राधाकृष्णन के शब्दो में गांधी प्रेम और सद्भाव के अमर प्रतीक है। जॉर्ज मार्षल ने कहा था, महात्मा गांधी सम्पूर्ण मानव चेतना के प्रवक्ता है। गांधी दर्शन एक ऐसी दवा है जो विश्व में व्याप्त हिंसा, घृणा, अविश्वास तथा मानवीय क्रूरताओं जैसे घातम बीमारियों का इलाज कर सकता है। गांधी ने नेतृत्व कौशलता कूट–कूटकर भरी हुई थी। नरल स्टमट्स ने कहा था कि 'गांधी विश्व के महान व्यक्ति है।' एक शक्तिशाली मानव को जीवन के श्रेष्ठ नैतिक आचरण के उदाहरण द्वारा संगठित किया जा सकता है। डॉ0 महादेव प्रसाद शर्मा के शब्दों में गांधी दर्शन विशुद्ध भारतीय उपज है। वर्तमान विश्व की समस्याओं जैसे कि अनैतिकता, हिंसा, भ्रष्टाचार, घृणा, आतंकवाद, वैमनस्य, अमानवीयता, अविश्वास, गरीबी, बेरोजगारी आदि का समाधान गांधी चिन्तन के तत्व क्रमशः नैतिकता, अहिंसा, पवित्रता, प्रेम, दया, मानवीयता, सत्याग्रह व रोटी के सिद्धान्तों का प्रभावी क्रियान्वयन करके कर सकते है। अतः वर्तमान भौतिक बुराइयों का अंत गांधी चिन्तन के आत्मज्ञान, आत्मसाक्षात्कार, आत्मबाल व आत्मानुशासन में ही मिल सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. भारतीय प्रशासन, डॉ0 सविता शर्मा, रितु पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 4।
2. भारतीय प्रशासन, डॉ0 सविता शर्मा, रितु पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 6।
3. भारतीय शासन एवं राजनीति, डॉ0 विप्लव, संदर्भ पब्लिशर्स एण्ड ड्रिस्टीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृ0 32।
4. कौटिल्य अर्थशास्त्र एवं शुक्रनीति की राज्य व्यवस्थाएँ, कमलेश अग्रवाल, पृ0 260
5. भारतीय शासन एवं राजनीति, डॉ0 विप्लव, संदर्भ पब्लिशर्स एण्ड ड्रिस्टीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृ0 38।
6. भारतीय प्रशासन, डॉ0 सविता शर्मा, रितु पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 6 व 7।
7. भारतीय शासन एवं राजनीति, डॉ0 विप्लव, संदर्भ पब्लिशर्स एण्ड ड्रिस्टीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृ0 41।
8. 14 अगस्त, 1947 की अर्धरात्री को पं0 जवाहर लाल नेहरू द्वारा संविधान सभा में दिए गए भाषण के अंश, आए.एस. खन्ना, संविधान समीक्षा का औचित्य, विधायनी, मध्य प्रदेश विधानभा सचिवालय, भोपाल, वर्ष 18 अंक–1, जनवरी–मार्च, 2000, पृ0 35।
9. भारतीय शासन एवं राजनीति, डॉ0 विप्लव, संदर्भ पब्लिशर्स एण्ड ड्रिस्टीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृ0 171–172।
10. कौशिक आशा, ''गाँधी नयी सदी के लिये'', रावत पब्लिकेशन, जयपुर, पृष्ठ 108
11. हरिजन, अप्रेल 7, 1946
12. बहरवाल डॉ. मनोज कुमार, ''भारतीय राजनीतिक चिंतक'', हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर, 2014, पृष्ठ 397
13. बहरवाल डॉ. मनोज कुमार, ''भारतीय राजनीतिक चिंतक'', हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर, 2014, पृष्ठ 398
14. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, पब्लिकेषन्स डिवीजन, दिल्ली, 1963, पृष्ठ 16
15. तेन्दुलकर डी. जी., ''महात्मा'', खण्ड 2, बंबई कावेरी एण्ड तेन्दुलकर, 1952, पृष्ठ 98
16. कृपलानी जे. बी., ''गाँधी–द स्टेट्समैन'', रंजीत पब्लिशर्स, दिल्ली, 1951, पृष्ठ 95
17. हरिजन, अगस्त 2, 1942, पृष्ठ 249
18. पचौरी डॉ. गिरीश, ''उदीयमान भारतीय समाज मे शिक्षक'', लायल बुक डिपो, मेरठ
19. गाँधीः कन्फेशन्स ऑफ ए लिंग्विस्ट, वर्ड प्रेस, जनवरी 21, 2010
20. नारायण डॉ. इकबाल, ''आधुनिक राजनीतिक विचारधाराएँ'', ग्रंथ विकास प्रकाशन, जयपुर, 2005, पृष्ठ 428
21. सक्सेना वन्दना, ''गाँधी जीवन और दर्शन'', बी. आर. पब्लिशर्स, जयपुर, 2006, पृष्ठ 100–101